प्रवचन-१८७, श्लोक-२७२, गाथा-१६०, रविवार, आषाढ़ शुक्ल ८, दिनांक २०-०७-१९८०

१५९-गाथा की टीका। टीका पूर्ण की। अब श्लोक है। श्लोक चलता है। आहाहा! २७२?

आत्मा जानाति विश्वं ह्यनवरतमयं केवलज्ञानमूर्ति:,
मुक्तिश्रीकामिनीकोमलमुखकमले कामपीडां तनोति।
शोभां सौभाग्यचिह्नां व्यवहरणनयाद्देवदेवो जिनेश:,
तेनोच्चैर्निश्चयेन प्रहतमलकलि: स्वस्वरूपं स वेत्ति।।२७२।।

श्लोकार्थ : व्यवहारनय से यह केवलज्ञानमूर्ति... अपना स्वभाव-केवलज्ञानस्वभाव, वह स्वभाव जब प्रगट हुआ, तब केवलज्ञानमूर्ति **आत्मा निरन्तर विश्व को वास्तव में जानता है...** आहाहा! व्यवहारनय से। विश्व भिन्न है, आत्मा भिन्न है। ओहोहो! आत्मा पर को जानता है, यह व्यवहार है। पर का करना, सँभाल करना, पर की व्यवस्था करना... आहाहा! यह तो बहुत दूर रह गया। अभी तो यहाँ पर को जानना, यह व्यवहार है। वे कहते हैं न कि व्यवहार चाहिए... व्यवहार चाहिए। यहाँ तो कहते हैं, पर को जानना, वह अभी व्यवहार है, क्योंकि ज्ञान पर में तन्मय नहीं हुआ। ज्ञान (तन्मय) नहीं हुआ। ज्ञान तो भिन्न है। वह ज्ञान, पर को जानता है, यह व्यवहारनय से है। आया न इतना?

व्यवहारनय से यह केवलज्ञानमूर्ति आत्मा निरन्तर विश्व को वास्तव में... व्यवहारनय से वास्तव में **जानता है...** आहाहा! **और मुक्तिलक्ष्मीरूपी कामिनी के कोमल मुखकमल पर...** अपनी निर्मल ज्ञानदशा, वीतरागीदशा, निर्विकल्प वीतरागी चमत्कारिक एकसमय में तीन काल को जाने, ऐसी वह कोमल, निर्मल... आहाहा! **मुक्तिलक्ष्मीरूपी कामिनी के कोमल मुखकमल...** निर्मल परिणति जिसकी। **पर कामपीड़ा को तथा सौभाग्यचिह्नवाली शोभा को फैलाता है।** अपने आनन्द को फैलाता है और ज्ञान की शोभा को फैलाता है।

क्या कहा ? केवलज्ञानमूर्ति व्यवहारनय से पर को जानता है तो अपनी केवलज्ञान की पर्याय की भी शोभा है और साथ में आनन्द की भी शोभा है। आहाहा!

ऐसा जानकर करना क्या ? करना यह कि आत्मा अन्दर ज्ञान-दर्शन-आनन्दादि से भरपूर परिपूर्ण तत्त्व है। उसका विकास होने पर विश्व को व्यवहार से जानता है, तथापि जानने में अपनी निर्मल मोक्षरूपी लक्ष्मी (का) कोमल मुखकमल, अपनी भावनारूपी आनन्द से और **सौभाग्यचिह्नवाली शोभा को फैलाता है।** आनन्द को भी भोगता है और परिपूर्ण ज्ञान की शोभा को भी फैलाता है।

यह क्यों लिया ?—कि विश्व को जाने तो आनन्द को वेदता है या नहीं ? विश्व को जानने में दु:ख है - ऐसा नहीं है। मात्र जानता है। तो भी आत्मा की पर्याय में आनन्द फैलाता है और अपने ज्ञान की शोभा भी प्रगट होती है। स्व-पर जानने के विश्व के भाव को जानने पर भी अपने आनन्द की पीड़ा... पीड़ा शब्द से यहाँ आनन्द। कामपीड़ा है न ? कामपीड़ा अर्थात् इच्छा नहीं; आनन्द। आहाहा! उस आनन्द को भी भोगता है और ज्ञान की पर्याय पर को जानने पर भी ज्ञान, ज्ञान से भी शोभता है। ज्ञान पर को जानता है, इसलिए पर से शोभता है (-ऐसा नहीं)। आहाहा! ऐसा है। क्या कहा, समझ में आया ?

चैतन्यस्वरूप भगवान अपने निर्मल केवलज्ञान द्वारा, जब केवलज्ञान प्रगट होता है, तब वह अपने उपाय से होता है, यह तो कहा। तब वह लोकालोक को जानता है। जानता है, उस समय दु:ख है - ऐसा नहीं। काम की पीड़ा अर्थात् भाव और भोग। अपने भाव के कोई करता है और ज्ञान की शोभा भी होती है। पर को जाने, इसलिए ज्ञान हीन हो जाता है - (ऐसा नहीं)। आहाहा! समझ में आया ? आत्मा की पूर्णता की शक्ति कितनी है, वह बताते हैं। कभी सुना न हो, कभी किया नहीं। आहाहा!

भगवान आत्मा पर के कर्तृत्व और भोक्तृत्व से छूटकर... ४९ भाव आये न ? (नेपथ्य से) छूटकर अपने ज्ञान की पर्याय जब प्रगट होती है, तो वह व्यवहार से पर को जानता है। जानने पर भी, अपने आनन्द का अनुभव करता है और अपना ज्ञान पर को जानता है, इसलिए अशोभा हो जाती है - ऐसा नहीं है। आहाहा! समझ में आया ? प्रभु ज्ञानस्वरूप पर को जाने, इसलिए वहाँ आगे आत्मा के आनन्द की वेदना नहीं, ऐसा नहीं और पर को जानता है, इसलिए ज्ञान की शोभा, अशोभा हो जाती है, ऐसा भी नहीं।

आहाहा! ऐसा जानना। गुण की परिपूर्णता। नवरंगभाई चले गये? समझ में आया? आहाहा!

व्यवहार से पर को जानने पर भी... आहाहा! **केवलज्ञानमूर्ति आत्मा निरन्तर विश्व को वास्तव में जानता है और मुक्तिलक्ष्मीरूपी कामिनी के...** निर्मल परिणतिरूपी कोमल पर्याय, उसके **मुखकमल पर कामपीड़ा...** अर्थात् आनन्द का वेदन **तथा सौभाग्य-चिह्नवाली...** पर को जाने, इसलिए अशोभा हो जाती है – ऐसा नहीं है। **सौभाग्यचिह्नवाली शोभा को फैलाता है।** आहाहा! किस प्रकार रचा है? अब यह बाहर में जहाँ रुके, उसमें यह कहाँ समझे? यह चैतन्यस्वरूप जहाँ प्रकाशमान हुआ, तो पर को जानने पर भी अपने आनन्द से छूटता नहीं है और पर को जानने पर भी अपने में अशोभा नहीं होती, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? घर में कभी पढ़ा तो नहीं होगा। निवृत्ति नहीं है न! हरिभाई! आहाहा! यह क्या कहते हैं? मर्म कहते हैं, मर्म।

भगवान आत्मा पर का कर्ता-भोक्तापना छोड़कर... यह ४९ भंग में आया न? प्रकृति का कर्ता और भोक्तापना छोड़कर अपने ज्ञानप्रकाश का फैलाव होता है। वह ज्ञान व्यवहारनय से पर को जानता है। व्यवहारनय से पर को जानता है, इससे अपनी आनन्द की दशा चली जाती है या आनन्द की दशा न्यून होती है – ऐसा नहीं है। इतना ही नहीं, परन्तु पर को जानता है तो ज्ञान में अशोभा फैलती है, पर को जानने से अपनी शोभा की समृद्धि में कुछ हीनता होती है, पर को जानने से स्वभाव में कुछ न्यूनता हो जाती है – ऐसा भी नहीं है। आहाहा! समझ में आया? अपनी लक्ष्मी की शोभा बताते हैं कि वह भले पर को जाने। जानने पर भी अपना आनन्द चला नहीं जाता; और पर को जाने, इससे कहीं अपनी शोभा चली नहीं जाती। आहाहा! ऐसी बातें लोहे में ऐसा कहाँ से सुनने को मिले? आहाहा! क्या कहते हैं?

चैतन्य का प्रकाश पर के कर्ता-भोक्ता से छूट जाता है। पर के कर्ता-भोक्ता, हों! अपना कर्ता-भोक्ता तो रहता है। अपनी पर्याय का कर्ता-भोक्ता रहता है। आहाहा! पर का कर्ता-भोक्ता छूट जाता है और ज्ञान की निर्मलता प्रगट होती है। वह निर्मलता पर को जाने, इसलिए निर्मलता के आनन्द में न्यूनता हो जाती है – ऐसा नहीं है। अपना आनन्द तो ऐसा का ऐसा भोगता है। पर को जानने पर भी आनन्द तो ऐसा का ऐसा है और पर को जानने

पर भी ज्ञान की शोभा, जो प्रकाश प्रगट हुआ, उसमें पर को जानने से कुछ कमी हो जाती है या शोभा में अशोभा होती है – ऐसा है नहीं। आहाहा! ऐसी बात है। आहाहा!

भगवान भी अन्दर यह आत्मा... आहाहा! जिसका करना है पहले, उसका रखा है अन्तिम; जिसे रखना है अन्तिम, उसको रखा है पहला। आहाहा! पर को जानना, वह तो बाद में, ऐसा कहते हैं। प्रकाश हुआ, पश्चात् पर को जानता है। आहाहा! अपनी शक्ति... आहाहा! आनन्द और ज्ञान और वीर्य की पूर्ण शक्ति का विकास हुआ, तब प्रथम तो अपना काम किया। उसमें पर को जानना, ऐसे पर आया, उससे अपने आनन्द अनुभव में कोई कमी आयी – ऐसा भी नहीं है और ज्ञान पर को जानता है; इसलिए शोभा में कुछ अशोभा हुई या कमी हुई – ऐसा है नहीं। आहाहा!

व्यवहारनय से यह केवलज्ञानमूर्ति... आहाहा! **आत्मा निरन्तर विश्व को वास्तव में जानता है...** व्यवहारनय से **और मुक्तिलक्ष्मीरूपी कामिनी के कोमल मुखकमल पर कामपीड़ा को...** अपने आनन्द को भोगना। उसे भोगता है। आहाहा! पर को जानने पर भी अपने आनन्द और अनुभव में कुछ कमी आयी, ऐसा नहीं है। आहाहा! बात गजब रखी है। **तथा (पर को जानते) सौभाग्य-चिह्नवाली शोभा को फैलाता है।** अपनी शोभा को फैलाता है – विस्तारता है। निश्चय और व्यवहार दो को जानने की ताकत है, वह ताकत खिल पाती है। पर को जानने की ताकत कम हो जाती है – ऐसा नहीं है। ऐसा पढ़ा भी नहीं होगा। तब निवृत्ति कहाँ थी ?

मुमुक्षु : वाँचे तो समझ में आये नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : बात सत्य है। पंकज को प्रेम है। निवृत्ति नहीं मिलती। यह जगत का पहले करना।

मुमुक्षु : अब यहीं रहनेवाले हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : वे भले रहनेवाले, परन्तु लड़के का लगाया है, उसका क्या ? प्रत्येक को अपना करने की बात है न ? आहाहा! और लड़के बराबर काम करे तो मैं निवृत्ति लूँ तो उसमें वह नहीं ले सके। आहाहा! वह बराबर काम चलावे तो मेरा ज्ञान बराबर रहे... आहाहा!

यहाँ तो प्रगट हुआ ज्ञान पर को जाने तो भी जैसा है, वैसा ही रहता है। आहाहा! और ज्ञान प्रगट हुआ, वह पर को जाने तो भी उसकी शोभा तो जितनी है, उतनी ही रहती है। तीन काल-तीन लोक जानने में कोई कमी नहीं। पर को जानने से कुछ कमी हो जाती है-ऐसा नहीं है। आहाहा! समझ में आया? यह तो दृष्टान्त। सबको ऐसा है न! चिमनभाई को कुछ नहीं था तो छोड़ दिया। कुछ तो बला लेनी पड़े न? बला। आहाहा! यह तो नियम ऐसा चलता है। यह कहीं एक के लिये नहीं है। सब जगह कुछ... कुछ... कुछ... स्वयं का स्वयं...

अरे! तू कहाँ जायेगा? मेरी सत्ता कहाँ खड़ी रहेगी? देह छूटकर मेरी सत्ता कहाँ खड़ी रहेगी? और यहाँ तो वहाँ तक कहा... ओहोहो! देह में रहने पर भी केवलज्ञान और केवलदर्शन की लक्ष्मी ऐसी प्रगट हुई... आहाहा! पर को जानने पर भी काम की पीड़ा अर्थात् आनन्द को भोगने में कमी नहीं रहती, न्यूनता नहीं होती और कभी नहीं होती। आहाहा!

मुमुक्षु : कामपीड़ा का अर्थ आपने परमार्थ से अलग ही कर डाला।

पूज्य गुरुदेवश्री : कामपीड़ा अर्थात् यह। व्यक्ति को इच्छा की पीड़ा होती है, वैसे यह भवना की भावना है। कामपीड़ा एक ओर रही। पर को देखने की भावना है न इतनी? उसमें पीड़ा नहीं, परन्तु आनन्द है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! कठिन है, (ऐसा) भाई शान्तिभाई कहते हैं। घर में पढ़े तो बराबर समझ में नहीं आता। ऐसी सूक्ष्म बात है, बापू! आहाहा! किस प्रकार आचार्यों ने रखा है! ओहोहो!

प्रभु! तेरी बलिहारी है। तू अकेला चैतन्य जहाँ प्रकाश में आया; पर का कर्ता-भोक्ता रहित होकर तेरे चैतन्य का तेज जैसा था, वह आया, आया, वह तेज भले पर को जाने, तो भी तेज के साथ शान्ति और आनन्द के वेदन में कुछ अन्तर नहीं पड़ता तथा कहीं उसकी शोभा, अशोभा होती है (-ऐसा नहीं है)। पर को जाना, पर को जाना, इसलिए अशोभा हुई - ऐसा नहीं है। यह तो अपेक्षा से कहा जाता है कि पर को जानता है। वह तो अपने को ही जानता है। आहाहा! कहो, हरिभाई! ऐसा है यह। कभी कहीं सुना नहीं होगा। आहाहा!

यहाँ चैतन्य प्रभु इतना शक्तिवन्त है कि पर का कर्ता-भोक्तापना छूटकर अपने

आनन्द का कर्ता-भोक्ता होता है। उस आनन्द के कर्ता-भोक्ता में पर को जानने से कुछ कमी हो जाती है और पर को जानने से खिल गया और पर को जाने, इसलिए कुछ शोभा कम हो जाए, ऐसा नहीं है। ऐसी सामर्थ्य भगवान आत्मा में है। आहाहा! पर को जाने तो भी आनन्द में रहता है। पर को जाने तो भी अपनी शोभा में रहता है। आहाहा! समझ में आया? सूक्ष्म बात है, भाई! वीतराग परमात्मा केवलज्ञानी परमात्मा पूर्ण, उनकी वाणी, बापू! सूक्ष्म है। लोग स्वयं को रुचे, वैसे अर्थ करते हैं और व्यवहार में ले जाते हैं। ऐसा नहीं। यहाँ तो कहते हैं, व्यवहार से जाने तो भी वस्तु तो ऐसी की ऐसी है, ऐसा कहते हैं। भाई, बाबूभाई! आहाहा!

व्यवहार से पर को जानता है - ऐसा कहा। पर में तन्मय तो नहीं होता, इसलिए व्यवहार कहा। जानता है तो व्यवहार कहा। पर तो पर है। स्व को जाने तो निश्चय और पर को जाने, वह व्यवहार है। परन्तु पर को जानने पर भी अपनी जो ज्ञानशक्ति विकास और पूर्णपने प्राप्त हुई, वह विकास जरा कम आता है और कुछ शोभा घटती है, ऐसा नहीं है। आहाहा! ऐसी वस्तु है। गाथा जरा सूक्ष्म है। आहाहा!

यह तो पद्मप्रभमलधारिदेव का श्लोक है। अमृतचन्द्राचार्य का नहीं। पद्मप्रभमलधारिदेव गजब हुए हैं। आहाहा! आनन्द... आनन्द... आनन्द में मुनि झूलते हैं। आहाहा! पहले कलश में आ गया है। भगवान में और मुनि में जरा अन्तर है। परन्तु अन्तर माने तो जड़ है - ऐसा कहा। आहाहा! हम जड़ हैं। अर र र! क्या कहते हैं यह? आहाहा! केवलज्ञान और केवलदर्शन... आहाहा! पर को जाने, ऐसी मुनि की इतनी ताकत है। मुनि में और केवलज्ञानी में अन्तर माने तो हम जड़ हैं, कहते हैं। आहाहा! यह मुनिपने की दशा तो देखो! अरे! यह मुनिपना है कहाँ? मुनिपना किसे कहना? आहाहा! जिसका तल देख लिया है, जिसकी शक्ति खिल गयी है, जिसकी शक्ति पर को जानने पर भी कम नहीं होती। जिसकी शक्ति पर को जानने पर भी आनन्द में कमी नहीं आती। आहाहा! ऐसा भगवान आत्मा, ऐसा जिसका स्वरूप है। व्यवहार से कहा, वहाँ यह डाला। बाबूभाई! व्यवहार से जाने तो भी ऐसी शोभा है। आहाहा! व्यवहार का अर्थ वह तो मात्र जानता है। यह तो कहना व्यवहार है। बाकी (तो) अपने को जानता है। आहाहा! परन्तु व्यवहार से जानते हुए अपने आनन्द में और शोभा में कुछ कमी आ जाए - ऐसा है नहीं। आहाहा! आहाहा!

ऐसा चैतन्य भगवान देहदेवल में विराजमान है। भगवान प्रभु आनन्द की मूर्ति, प्रभु! कहाँ है तू तुझे खोजता है। सुख का सागर आनन्द स्थित है न! आहाहा! उस सुख के सागर में केवलज्ञान और केवलदर्शन प्रगट हुआ, वह कदाचित् भले व्यवहार से पर को जाने; इससे उसके सुखसागर में कमी नहीं आती। आहाहा! ऐसा नाथ! तेरा स्वभाव है, प्रभु! भगवान! तू तेरी ऐसी शक्ति रखता है। उस शक्ति को माने नहीं और अल्प-अल्प इसका करना और इसका करना। आहाहा! एक रुई की पूणी को ऐसा करना, उसे आत्मा नहीं कर सकता। रुई-रुई, पूणी करते हैं न, पूणी? क्या कहलाता है वह? रेंटिया-रेंटिया। रेंटिया में ऐसे हो रहे, इसलिए जोड़ दे डोरा। आहाहा!

छद्मस्थ के ज्ञान में भी ऐसा स्व-परप्रकाशक ज्ञानस्वभाव अपना है कि पर ज्ञात हो तो भी ज्ञान में जो कुछ आनन्द और शोभा है, वह ऐसी की ऐसी है। छद्मस्थ को भी ऐसी की ऐसी है। आहाहा! अरे रे! यह कौन है? प्रभु! कितना है? इसकी एक-एक शक्ति खिली हुई कितनी कैसी है? यह जानने का प्रयत्न किया नहीं और बाहर का थोथा (किया) आहाहा!

निश्चय से तो, जिन्होंने मल और क्लेश को नष्ट किया है... क्या कहते हैं? पर को जानने-देखने पर भी... पहली निर्मलता और शोभा बतायी। अब कहते हैं कि उसमें कोई मल या अशोभा है ही नहीं। है? **निश्चय से तो, जिन्होंने मल और क्लेश को नष्ट किया है ऐसे वे देवाधिदेव जिनेश निज स्वरूप को अत्यन्त जानते हैं।** व्यवहार से पर को जानने पर भी निश्चय से स्व को जानते हैं। आहाहा! एक व्यवहार-निश्चय में कितना डाला! आहाहा! यह बात कहीं नहीं मिलती। दिगम्बर मुनि के अलावा, दिगम्बर धर्म के अलावा यह बात कहीं नहीं है। क्या बात करते हैं! क्या शोभा करते हैं! आहाहा! प्रभु! तेरी शोभा का पार नहीं। प्रभु! तू अतीन्द्रिय आनन्द, अतीन्द्रियज्ञान, अतीन्द्रिय शान्ति का सागर है। वह पूर्ण प्रगटे, पर को जानने में तुझे कुछ कमी आ जाए या अशोभा आवे, ऐसा है नहीं। क्यों?—कि **मल और क्लेश को नष्ट किया है...** आहाहा! आया न?

निश्चय से तो,... आहाहा! वास्तव में तो जिन्होंने **मल और क्लेश को नष्ट किया है...** व्यवहार को जाने तो मल और क्लेश आ जाए, ऐसा नहीं है। आहाहा! क्या कहना चाहते हैं? दिगम्बर मुनियों की बलिहारी है, भाई! दूसरों को दु:ख लगे। दूसरे भी भगवान

है, भाई ! तेरी भी शोभा इतनी ही है। इतनी और ऐसी ही है। तेरी शक्ति खिलने पर तू दूसरे को जाने तो भी तेरी खिलावट में कोई कमी नहीं है। आहाहा ! तेरे प्रकाश में दूसरे ज्ञात होने पर भी तेरी शक्ति की अशोभा नहीं है। आहाहा ! ऐसी महिमा उसके प्रकाश की है। आहाहा ! पर को जाने तो भी प्रभु स्व-परप्रकाशक सामर्थ्य होने से, वह पर को जानने पर भी परसन्मुख कुछ लक्ष्य नहीं है। आहाहा ! उपयोग परसन्मुख नहीं है। केवली पर को जाने, उसमें उपयोग पर के ऊपर नहीं है। आहाहा ! उपयोग तो स्वयं अपने में ही है। आहाहा !

अहो ! **निश्चय से तो, जिन्होंने मल और क्लेश को नष्ट किया है, ऐसे वे देवाधिदेव जिनेश निज स्वरूप को अत्यन्त जानते हैं।** व्यवहार से पर को भले जाने, ऐसा कहने में आया। पश्चात् ऐसा भी कहा कि निश्चय से तो प्रभु अपने को जानते हैं। आहाहा ! इसी तरह प्रत्येक आत्मा की बात है। प्रत्येक आत्मा स्व-परप्रकाशक सामर्थ्य रखता है। प्रकाश में भले पर ज्ञात हो, इससे कोई चैतन्य प्रकाश में मलिनता आ जाए - ऐसा नहीं या पर को जाने, इसलिए क्लेश आ जाए - ऐसा नहीं है। रागी प्राणी है तो पर को जानने में राग आवे, वह तो स्वयं का दोष है। उस पर को जानने से राग होता है - (ऐसा नहीं है)। केवली तो तीन काल-तीन लोक को देखते हैं। सातवीं गाथा में कहा न, भाई ! पर को जाने तो राग होता है। भेद को जाने तो राग होता है। भगवान तो तीन काल-तीन लोक को देखते हैं, उन्हें क्यों राग नहीं ? भेद को जानने से राग नहीं होता। रागी को राग है, वह भेद को जानता है तो राग होता है। अरे ! ऐसा सब अन्तर। ऐसा जवानों ने कभी सुना भी नहीं होगा। आहाहा ! धन्धे के कारण... आहाहा ! क्या कहा, समझ में आया ? आहाहा ! **जिनेश निज स्वरूप को अत्यन्त जानते हैं।** आहाहा !

गाथा-१६०

जुगवं वट्टइ णाणं केवलणाणिस्स दंसणं च तहा।
दिणयर-पयास-तावं जह वट्टइ तह मुणेयव्वं।।१६०।।

युगपद् वर्तते ज्ञानं केवल-ज्ञानिनो दर्शनं च तथा।
दिनकर-प्रकाश-तापौ यथा वर्तेते तथा ज्ञातव्यम्।।१६०।।

इह हि केवलज्ञानकेवलदर्शनयोर्युगपद्वर्तनं दृष्टान्तमुखेनोक्तम्। अत्र दृष्टान्तपक्षे क्वचित्काले बलाहकप्रक्षोभाभावे विद्यमाने नभस्स्थलस्य मध्यगतस्य सहस्रकिरणस्य प्रकाशतापौ यथा युगपद् वर्तेते, तथैव च भगवत: परमेश्वरस्य तीर्थाधिनाथस्य जगत्त्रय-कालत्रयवर्तिषु स्थावरजङ्गमद्रव्य-गुणपर्यायात्मकेषु ज्ञेयेषु सकलविमलकेवलज्ञानकेवलदर्शने च युगपद् वर्तेते। किञ्च संसारिणां दर्शनपूर्वमेव ज्ञानं भवति इति।

तथा चोक्तं प्रवचनसारे –

णाणं अत्थंतगयं लोयालोएसु वित्थडा दिट्ठी।
णट्ठ-मणिट्ठं सव्वं इट्ठं पुण जं तु तं लद्धं।।

अन्यच्च –

दंसणपुव्वं णाणं छदमत्थाणं ण दोण्णि उवओगा।
जुगवं जह्मा केवलि-णाहे जुगवं तु ते दोवि।।

तथाहि

ज्यों ताप और प्रकाश रवि के एक सँग ही वर्तते।
त्यों केवली को ज्ञानदर्शन एक साथ प्रवर्तते॥१६०॥

अन्वयार्थ : [केवलज्ञानिनः] केवलज्ञानी को [ज्ञानं] ज्ञान [तथा च] तथा

[दर्शनं] दर्शन [युगपद्] युगपत् [वर्तते] वर्तते हैं। [दिनकरप्रकाशतापौ] सूर्य के प्रकाश और ताप [यथा] जिस प्रकार [वर्तते] (युगपत्) वर्तते हैं [तथा ज्ञातव्यम्] उसी प्रकार जानना।

टीका : यहाँ वास्तव में केवलज्ञान और केवलदर्शन का युगपत् वर्तना दृष्टान्त द्वारा कहा है।

यहाँ दृष्टान्तपक्ष से किसी समय बादलों की बाधा न हो, तब आकाश के मध्य में स्थित सूर्य के प्रकाश और ताप जिस प्रकार युगपत् वर्तते हैं, उसी प्रकार भगवान परमेश्वर तीर्थाधिनाथ को त्रिलोकवर्ती और त्रिकालवर्ती, स्थावर-जंगम द्रव्यगुणपर्यायात्मक ज्ञेयों में सकल-विमल (सर्वथा निर्मल) केवलज्ञान और केवलदर्शन युगपत् वर्तते हैं। और (विशेष इतना समझना कि), संसारियों को दर्शनपूर्वक ही ज्ञान होता है (अर्थात् प्रथम दर्शन और फिर ज्ञान होता है, युगपत् नहीं होते)।

इसी प्रकार (श्रीमद्भगवत्कुन्दकुन्दाचार्यदेवप्रणीत) श्री प्रवचनसार में (६१ वीं गाथा द्वारा) कहा है कि:—

(वीरछन्द)

ज्ञान प्राप्त है अर्थ अन्त को दर्शन लोकालोक सु व्याप्त।
सर्व अनिष्ट विनष्ट हुआ है और इष्ट जो वह सब प्राप्त॥

'[गाथार्थ :] ज्ञान पदार्थों के पार को प्राप्त है और दर्शन लोकालोक में विस्तृत है सर्व अनिष्ट नष्ट हुआ है और जो इष्ट है, वह सब प्राप्त हुआ है।'

और दूसरा भी (श्री नेमिचन्द्रसिद्धान्तिदेवविरचित बृहद्द्रव्यसंग्रह में ४४वीं गाथा द्वारा) कहा है कि:—

(वीरछन्द)

छद्मस्थों को पहले दर्शन होता है फिर होता ज्ञान।
क्योंकि उन्हें दोनों युगपत नहिं, केवलि को द्वय युगपत जान॥

'[गाथार्थ :] छद्मस्थों को दर्शनपूर्वक ज्ञान होता है (अर्थात् पहले दर्शन और फिर ज्ञान होता है), क्योंकि उनको दोनों उपयोग युगपत् नहीं होते; केवलीनाथ को वे दोनों युगपत् होते हैं।'

गाथा - १६० पर प्रवचन

१६० गाथा।

जुगवं वट्टइ णाणं केवलणाणिस्स दंसणं च तहा।
दिणयर-पयास-तावं जह वट्टइ तह मुणेयव्वं।।१६०।।

ज्यों ताप और प्रकाश रवि के एक सँग ही वर्तते।
त्यों केवली को ज्ञानदर्शन एक साथ प्रवर्तते॥१६०॥

टीका : यहाँ वास्तव में केवलज्ञान... कोई ऐसा कहे कि पूर्ण की बात ऐसी कैसे की ? परन्तु पहले सब बात हो गयी है। सम्यग्दर्शन क्या ? सम्यग्दर्शन किस प्रकार होता है ? सम्यग्ज्ञान क्या ? यह सब बात हो गयी है। अब यह तो सम्यग्दर्शन-ज्ञान उपरान्त चारित्र की स्थिरता से केवलज्ञान-केवलदर्शन उत्पन्न होता है, उसकी बात चलती है। जो बात शुरु की है, वह बात पूरी करते हैं; (नहीं तो) वह बात अधूरी रह जाए। आहाहा! चारित्र की बात न करे तो अधूरी रहे और चारित्र से प्राप्त क्या होत है, (यह बात कही है)। आहाहा! अन्तर ज्ञान और आनन्द में रमणता (होती है, तब पूर्णता होती है)। अकेली ज्ञान और श्रद्धा कहीं मोक्ष का कारण नहीं है। मोक्ष का कारण तो दर्शन-ज्ञान और चारित्र तीनों मिलकर है, यह कहते हैं और भले तीनों हो, और तीनों प्रगट होते हैं, वह कैसी चीज़ है। आहाहा! अलौकिक चीज़! अलौकिक चीज़!!

अपने में सूक्ष्म स्वभाव अरूपी होने पर भी राग और कर्ता-भोक्ता का नाश होकर अपना जहाँ अराग और.. आहाहा! अपने स्वरूप का पूर्ण अनुभव भोक्ता (होता है), क्योंकि कर्ता-भोक्ता आत्मा का गुण है। सैंतालीस नय में है प्रवचनसार (में है)। कर्ता-भोक्ता आत्मा का गुण है तो वह अपनी पर्याय को करे और भोगे, वह अपना स्वभाव है। आहाहा! रागादि पर को करे, वह भी उसका स्वभाव है - ऐसा भी कहा है। आहाहा! क्योंकि उसकी पर्याय में होते हैं न ? कर्ता-भोक्ता—राग का कर्ता और राग का भोक्ता, वह भी अपने में, अपने से नय से है। आहाहा! यहाँ तो कर्ता-भोक्ता का नाश करके पूर्णदशा प्रगट हुई, वह कैसी है, यह बात चलती है। आहाहा!

यहाँ वास्तव में... देखो! **केवलज्ञान और केवलदर्शन का युगपत् वर्तना...** आहाहा!

ज्ञान जानता है, दर्शन देखता है। दर्शन में यह ज्ञान और यह आत्मा, ऐसे भेद बिल्कुल नहीं है; और ज्ञान में अनन्त गुण का भेद और उन अनन्त गुणों की अनन्त पर्यायें, ऐसी एक पर्याय में अनन्त अविभाग प्रतिच्छेद, सबको भेद करके जानता है, तथापि विकल्प नहीं है। आहाहा! **यहाँ वास्तव में केवलज्ञान और केवलदर्शन का युगपत्...** एकसाथ वर्तते हैं। भगवान को केवलज्ञान और केवलदर्शन एकसाथ हैं। आहाहा! छद्मस्थ को पहले देखे और पश्चात् ज्ञान (होता है)। केवली को ऐसा नहीं है। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह श्वेताम्बर में कहा है। मिथ्या बात है। इन सब बातों में बहुत फेरफार कर डाला। वापस उनके आचार्यों ने ही फेरफार कर डाला। ऐसा कहा है न कि एक समय में केवलज्ञान और दूसरे समय में केवलदर्शन? ऐसा नहीं लेना। वह तेरे लिये नहीं है, जैन के लिये नहीं है। दूसरों के लिये है। अब कहा है जैन के लिये जैन को... प्रभु! प्रभु! क्या करना? किसी के सामने विरोध करना नहीं। कोई प्राणी पूर्ण परमात्मा है, द्रव्य से परमात्मा है। उसका अनादर करना नहीं। परन्तु वस्तु का स्वरूप जैसा है, वैसा वर्णन तो करते हैं। आहाहा!

कहते हैं, एक ओर दो वस्तु। एक ओर दर्शन तीन काल-तीन लोक को बिल्कुल भेद किये बिना देखता है और एक ओर उसी समय का ज्ञान एक-एक द्रव्य के अनन्त गुणों का भेद करके और गुण की पर्याय का भेद करके जानता है। यह कोई अद्भुत रस है। आहाहा! दीपचन्दजी ने लिखा है। पंच-पंच है न? पंच में लिखा है न? 'अध्यात्म पंच संग्रह।' 'अध्यात्म पंच संग्रह' में दीपचन्दजी ने लिखा है। आहाहा! अद्भुतरस की व्याख्या क्या? अद्भुतरस! एक गुण दो को भेद करके जानता नहीं और उसके साथ एक गुण भेद कर-करके अनन्त गुणों को, अनन्त पर्यायों को जानता है। आहाहा! उसमें लिखा है। वह अद्भुतरस है - ऐसा लिखा है। आहाहा!

क्या कहा? साधारण व्यक्ति को बात साधारण लगे। साधारण बात नहीं है, प्रभु! ऐसा कहते हैं कि प्रभु! तू आत्मा एक। उसके गुण दो। है अनन्त, उनमें से दो की मुख्यता से बात की है। और वे दो रहनेवाले एक समय में साथ में। युगपद् कहा न? युगपद् वर्तते। **केवलज्ञान और केवलदर्शन...** एकसाथ **वर्तना दृष्टान्त द्वारा कहा है।** आहाहा!

यहाँ दृष्टान्तपक्ष से किसी समय बादलों की बाधा न हो... सूर्य में। **तब आकाश के मध्य में स्थित सूर्य के प्रकाश और ताप जिस प्रकार युगपत् वर्तते हैं,...** सूर्य में, जब बादल का अभाव हो, तब प्रकाश और ताप... आहाहा! एकसाथ वर्तते हैं।

उसी प्रकार भगवान परमेश्वर तीर्थाधिनाथ को... आहाहा! **त्रिलोकवर्ती और त्रिकालवर्ती,...** त्रिलोकवर्ती और त्रिकालवर्ती... आहाहा! तीन लोक-तीन काल में वर्तनेवाले... आहाहा! **स्थावर-जंगम द्रव्यगुणपर्यायात्मक ज्ञेयों में सकल-विमल (सर्वथा निर्मल) केवलज्ञान और केवलदर्शन युगपत् वर्तते हैं।** आहाहा! केवलदर्शन सर्व को देखे, उसमें भेद नहीं। केवलज्ञान एक-एक समय में प्रत्येक गुणादि का भेद पाड़कर देखता है। एक ही समय में दो गुणों की पर्याय एक समय में रहे, यह अद्भुतरस है। आहाहा! कौन सी बात जँचे!

मुमुक्षु : केवलदर्शन, केवलज्ञान को देखता है या नहीं?

पूज्य गुरुदेवश्री : सब ही देखता है। सब ही जानता है, परन्तु देखे भेद पाड़कर (देखता) नहीं। केवलदर्शन भेद पाड़कर (देखता) नहीं कि मैं दर्शन हूँ, यह ज्ञान है। ऐसा नहीं। आहाहा! यह तो वीतराग का मार्ग, भाई! आहाहा! यह कहा नहीं? 'अध्यात्म पंच संग्रह' में तो ऐसा लिया है। जहाँ नवरस का वर्णन किया है, उसमें एक अद्भुतरस वर्णन किया है। उस अद्भुतरस में यह कहा है। ओहो! प्रभु! तेरे प्रकाश की एक पर्याय किसी को भेद पाड़े बिना देखती है और एक समय की एक पर्याय प्रत्येक को भेद पाड़कर (जानती है) कि यह जीव है, यह जड़ है, यह चैतन्य है, ज्ञान है, आनन्द है, प्रत्येक को भिन्न पाड़कर जानता है। प्रभु! एक समय में दो पर्यायें। एक पर्याय का एक स्वभाव और एक पर्याय का यह स्वभाव, कोई अद्भुतरस है! गूढ़ बात है, भाई! यह कोई वार्ता नहीं। आहाहा! यह प्रभु के घर की बात है और प्रभु के घर में जाने की बात है। आहाहा!

कहते हैं, **यहाँ दृष्टान्तपक्ष से किसी समय बादलों की बाधा न हो, तब आकाश के मध्य में स्थित सूर्य के प्रकाश और ताप...** प्रकाश भी करता है और ताप-गर्मी भी देता है। एक समय में दो होते हैं। यह तो दृष्टान्त दिया। आहाहा! सूर्य का ऐसा है। **जिस प्रकार युगपत् वर्तते हैं, उसी प्रकार भगवान परमेश्वर तीर्थाधिनाथ को त्रिलोकवर्ती...** ईश्वर, परमेश्वर त्रिलोक प्रभु, अनन्त तीर्थंकर... आहाहा! वे भी अपने केवलदर्शन और केवलज्ञान

से एक समय में दोनों देखते हैं। जैसे सूर्य में से ताप और प्रकाश एक समय में होता है; वैसे आत्मा में ज्ञान और दर्शन; तीन लोक को जाने, ऐसा ज्ञान और तीन लोक को भेद पाड़े बिना देखे-दर्शन, ऐसे एक समय में दोनों होते हैं। आहाहा! ऐसी बात! सामायिक करो, प्रौषध करो, प्रतिक्रमण करो। अर र! अरे! भाई! पहले यह सब किया है। आहाहा! यह बात मूल चीज़ (रह गयी है)।

चैतन्य प्रकाश 'स्व-परप्रकाशक शक्ति हमारी।' 'स्व-परप्रकाशक शक्ति हमारी तातैं वचन भेद भ्रम भारी, निजरूपा निज शक्ति भासी, पररूपा पर भासी।' स्वज्ञेय और परज्ञेय दोनों। आत्म एक स्वज्ञेय और परज्ञेय दोनों को जाने। परन्तु परज्ञेय को जानने से आत्मा में कुछ कमी आ जाती है... आहाहा! या विशेष हो जाए अथवा पर को नहीं जानता - ऐसा नहीं है। आहाहा! परसम्बन्धी अपने ज्ञान की पर्याय के सामर्थ्य में उसे जानने में स्व-पर पूरा ज्ञात होता है। अपनी पर्याय को जानने में ही तीन काल को जानना-देखना एक समय में आ जाता है। आहाहा! अरे! उसका माहात्म्य नहीं आता और बाहर का माहात्म्य (नहीं छूटता)। आहाहा! लड़का कोई अच्छा-होशियार आवे तो प्रसन्न-प्रसन्न हो जाता है और लापसी पकाओ। एक दिन में पाँच हजार की आमदनी हो, वहाँ आज यह अमुक करो। धूल में क्या है? तीन लोक का नाथ चैतन्य अनन्त समृद्धि से भरपूर भगवान... आहाहा!

मुमुक्षु : भगवान भूला।

पूज्य गुरुदेवश्री : भगवान भूला है अनादि से। आहाहा! कहते हैं, जैसे सूर्य में बादल के अभाव के कारण आताप और प्रकाश एक साथ होते हैं। **उसी प्रकार भगवान परमेश्वर तीर्थाधिनाथ को त्रिलोकवर्ती और त्रिकालवर्ती,...** आहाहा! तीन लोक में वर्तनेवाले और तीन काल में वर्तनेवाले। तीन काल किसे कहें? प्रभु! आहाहा! क्षेत्र भी कहीं अन्तरहित। आहा! यह लोक असंख्य योजन में है। पश्चात् खाली जगह-आकाश है। वह आकाश नाम का पदार्थ कहाँ गया? कहाँ रहा? चलते... चलते... चलते... कहीं उसका अन्त नहीं। आकाश नामक पदार्थ का कहीं अन्त नहीं। आहाहा! इन त्रिलोकवर्ती और त्रिकालवर्ती। त्रिलोकवर्ती और त्रिकालवर्ती। आहाहा! त्रिकालवर्ती अर्थात् भविष्य में वर्तनेवाले को अभी जाने। आहाहा! ऐसा आया या नहीं?

त्रिलोकवर्ती और त्रिकालवर्ती,... भविष्य में वर्तमान को भी वर्तमान में जान ले। आहाहा! जिसका अन्त नहीं, उसे भी अभी जान ले। आहाहा! जिसके क्षेत्र का अन्त नहीं। अन्त होवे तो बाद में क्या? आकाश में बाद में.. बाद में.. बाद में.. बाद में.. बाद में.. (क्या)? वह सर्व को जाननेवाला भगवान... आहाहा! उसके ज्ञान में – तर्क में मुश्किल पड़ जाए, ऐसी चीज़ को भी भगवान तो एक समय में देखते-जानते हैं। आहाहा! तीन काल—आदि-अन्तरहित काल। काल की आदि नहीं, काल का अन्त नहीं, उसे भी जाने। क्षेत्र की आदि यहाँ से है, परन्तु अन्त नहीं। ऐसे देखो तो आदि और अन्त नहीं। आकाश की श्रेणी। एक श्रेणी कहाँ पूरी हुई और कहाँ से शुरु हुई? आकाश की अनन्त श्रेणियाँ हैं। आहाहा! वह त्रिकाल और त्रिलोकवर्ती। तीन काल में वर्तनेवाला और तीन लोक में वर्तनेवाला... आहाहा! वह सर्व को **युगपत् वर्तते हैं,..** है?

स्थावर-जंगम द्रव्यगुणपर्यायात्मक ज्ञेयों में सकल-विमल (सर्वथा निर्मल) केवलज्ञान और केवलदर्शन युगपत् वर्तते हैं। आहाहा! देखना और जानना एक समय में वर्तता है। जैसे सूर्य में प्रकाश और ताप एक समय में वर्तता है, वैसे भगवान आत्मा में एक समय में जानना और देखना (होता है)। भले दोनों के स्वभाव भिन्न है, तथापि एक समय में दोनों को जाने। आहाहा! विचार किया नहीं। भगवान को केवलज्ञान है... केवलज्ञान है... इतना। परन्तु वह क्या वस्तु है?

कभी विचार किया कुछ? कि यह लोक है, यह क्षेत्र; इस क्षेत्र का तो अन्त आयेगा, यह जड़-चैतन्य है। पश्चात् खाली जगह है, उसका कहीं अन्त है? उसका अन्त कहाँ? आहाहा! इसी तरह काल की शुरुआत कहाँ से? कि पहला समय यह शुरुआत है। पहला क्या? द्रव्य की पहली पर्याय कौन सी? आहाहा! गजब बात है। अनादि... अनादि... अनादि द्रव्य... द्रव्य और पर्याय अनादि-अनन्त। द्रव्य भी अनादि और उसकी पर्याय भी अनादि। आहाहा! इसी प्रकार यहाँ आकाश का अन्त नहीं और काल का अन्त नहीं। आहाहा! उसे ज्ञान-दर्शन जानता-देखता है। युगपद् जानता-देखता है।

और (विशेष इतना समझना कि), संसारियों को दर्शनपूर्वक ही ज्ञान होता है... इतना अन्तर। केवलज्ञानियों को केवलज्ञान और दर्शन एक समय में होता है। छद्मस्थ को पहले दर्शन और पश्चात् ज्ञान, ऐसा होता है। दर्शनपूर्वक ज्ञान होता है। आहाहा! भेद किये

बिना की वस्तु पहले देखे और फिर भेद पाड़ने की वस्तु देखे—ऐसा दर्शन और ज्ञान का स्वभाव छद्मस्थ को ऐसे होता है। आहाहा! किसी भी चीज़ को देखने में छद्मस्थ अल्प ज्ञानी को पहले दर्शन (उपयोग होता है)। आहाहा! सामान्यपना—उस चीज़ में भेद, विस्तार के अभाववाला दर्शन और उसी समय में... केवली को उसी समय में और इसे (छद्मस्थ को) समय फेर-छद्मस्थ को समय फेर। दर्शन के समय ज्ञान नहीं और ज्ञान के समय दर्शन नहीं। आहाहा! अब ऐसा समझने को कब निवृत्त हो? धन्धे का करना, स्त्री-पुत्र का करना, इज्जत का करना या यह करना? आहाहा! यह सब करके छोड़ते हैं। पर का करना छोड़ते हैं? आहाहा!

मैं कौन हूँ? कितना हूँ? कहाँ हूँ? मेरी शक्ति की अपरिमितता किस प्रकार है? और इस काल और क्षेत्र की मर्यादा कितनी है? इसका विचार करने पर गम्भीर... गम्भीर... गम्भीर... यह वस्तु गम्भीर और इसे जाननेवाला ज्ञान और दर्शन गम्भीर। आहाहा! केवली एक समय में जानते-देखते हैं। छद्मस्थ को पहले दर्शन और पश्चात् ज्ञान (होता है)। **(अर्थात् प्रथम दर्शन और फिर ज्ञान होता है, युगपत् नहीं होते)।** आहाहा! ऐसा भगवान कुन्दकुन्दाचार्य ने प्रवचनसार में कहा है।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)